नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका ❒ वर्ष-४ ❒ अंक-३ ❒ मुम्बई ❒ मार्च - २०१३ ❒ मूल्य-रु.९/-

सरदार भगत सिंह

राजगुरू

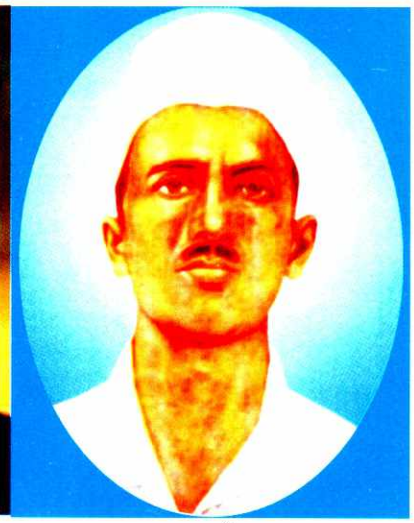

सुखदेव

।। ओ३म् ।।

शहीदों की विरासत हैं भारत की आज़ादी

आर्य समाज सान्ताक्रुज़

मधु का झरना

डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मैं चाहता हूँ कि संसार का प्रत्येक मानव सत्य की साधना करनेवाला हो, और प्रत्येक सत्यसाधक के ऊपर मधु बरसे, मधु का झरना झरे। पवन अपनी शीतल मन्द लहरियों के साथ मधु बहाकर लाएँ। कल-कल करती सरिताएँ अपनी सलिल-धाराओं के साथ मधु प्रवाहित करती हुई आएँ। रसभरी ओषधियाँ अपने अमृत-रस से हमारे जीवनों में मधु संचारित करें। इन सबसे मधु पाकर हम मधुमय हो जाएँ

१. मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ - ऋ. १. ९०. ६ - कभी अपने श्याम आँचल से माता के समान सबको आच्छादित करती हुई और कभी अपनी शान्त, मधुर, चटकीली चन्द्रिका को छिटकाती हुई विश्रामदायिनी रात्रियाँ हमारे लिए मधुमती हों। जागृति और नवस्फूर्ति देनेवाली स्वर्णिल उषाएँ मधुमयी हों। समस्त पार्थिव लोक मधुमय हो। पितृतुल्य पालनकर्त्ता द्युलोक भी मधुमय हो –

२. मधु नक्तमुतोषसो, मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ - ऋ. १.९०.७ - हरित पत्रों का दुकूल ओढ़े हुए ये वृक्ष-वनस्पति हमारे लिए मधुमय हों। रश्मियों से जगत् को प्रकाशित करनेवाला पावन सूर्य मधुमय हो। अपने स्तनों से अमृतोपम दूध को क्षरित करनेवाली गौएँ मधुमयी हों।

३. मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ - ऋ. १.९०.८ - अहा ! यह सामने मधुमयी लता दिखाई दे रही है। यह 'मधुयष्टि' अपने अन्दर मधुरस को लेकर उत्पन्न हुई है। हे मधुलता, मधु के लिए हम तुझे खनन करते हैं। तू मधुमय है, हमें भी मधुमय कर, हमें भी मधुमय कर।

४. इयं वीरून्मधुजाता, मधुना त्वा खनामसि। मधोरधि प्रजातासि, सा नो मधुमतस्कृधि॥ - अथर्व. १.३४.१ - मेरे जिह्वाग्र पर मधु हो, जिह्वामूल में मधु हो। हे मधु, तुम मेरे एक-एक ज्ञान में, एक-एक संकल्प में, एक-एक कर्म में रम जाओ, तुम मेरे चित्त में बस जाओ –

५. जिह्वाया अग्रे मधु मे, जिह्वामूले मधूलकम्। ममेदह क्रतावसो, मम चित्तमुपायसि॥ - अथर्व. १.३४.२ - मेरा घर से निकलना मधुमय हो, निकलकर कर्म – क्षेत्र में पग रखना मधुमय हो। मेरी वाणी में मधु हो, प्रत्येक गति – विधि में मैं साक्षात् मधु हो जाऊँ।

६. मधुमन्मे निक्रमणं, मधुमन्मे परायणम्। वाचा वदामि मधुमद्, भूयासं मधुसन्दृशः॥ - अथर्व. १.३४.३ - अहा, प्रकृति में सर्वत्र मधु रमा हुआ है। ये रम्य पर्वत – मालाएँ सिर उठाए खड़ी हैं, इनके अन्दर भी मधु है, इनके अन्दर हरियाली का मधु है, इनके अन्दर स्त्रोतों और झरनों का मधु है, इनके अन्दर वृक्ष – लताओं और फल – फूलों का मधु है, इनके अन्दर वनों की शान्ति का मधु है, इनके पाषाणों की कठोरता का मधु है। वह मधु हमें भी प्राप्त हो। बादलों के अन्दर भी मधु है, सरसता का मधु है, पवित्रता का मधु है। वह मधु हमें भी प्राप्त हो। गायों के अन्दर भी मधु है, गोरस का मधु है, परोपकारिता का मधु है, सौम्यता का मधु है, अहिंसा का मधु है, मातृत्व का मधु है, सरलता का मधु है वह मधु हमें भी प्राप्त हो। अश्वों के अन्दर भी मधु है, बल का मधु है, वेग का मधु है, शक्ति का मधु है, पुरूषत्व का मधु है। वह मधु हमें भी प्राप्त हो। द्राक्षासव प्रभृति आसवों के अन्दर भी मधु है, बलोत्तेजकता का मधु है, विकार-शामकता का मधु है, स्वास्थ्यवर्धकता का मधु है। वह मधु हमें हमें भी प्राप्त हो –

७. यद् गिरिषु पर्वतेषु, गोष्वश्वेषु यन्मधु। सुरायां सिच्यमानायां, यत् तत्र मधु तन्मयि॥ अथर्व. ९.१.१८ - हे अश्विदेवो, तुम भी हमारे जीवनों में मधु भरो, ऐसा मधु भरो जैसा सरघाओं (मधुमक्षिकाओं) का मधु होता है, जिसमें मिठास-ही-मिठास होता है। हे द्यावापृथिवी, तुम अश्वियुगल कहलाते हो, तुम मधुरस से परिपूर्ण हो, हमें भी मधुरस प्रदान करो। हे सूर्य-चन्द्र, तुम भी अश्विद्वय नाम से प्रसिद्ध हो, तुम्हारे अन्दर भी अनुपम मधु भरा है, हमें भी उस मधु से सनाथ करो। हे अहोरात्रो, तुम भी 'अश्विनौ' हो, तुम भी मधु से विकसित हो, उस मधु का विकास हमारे अन्दर भी करो। हे प्राणापानो, तुम्हारी भी अश्विसंज्ञा है, तुम भी मधुसिक्त हो, हमें भी मधुसिक्त करो। हे शल्यचिकित्सक तथा ओषधिचिकित्सक वैद्यो, तुम भी अश्वि-युगल हो, तुम्हारे पास भी मधु है, जिस मधु से तुम दुःखियों का दुःख, रोगियों का रोग और आतुरों की आतुरता हरते हो। उस मधु में से कुछ अंश हमें भी प्रदान करो। हे शुभ मधु के अधिपतियो, हमें ऐसा मधुमय कर दो कि हमारे अंग – अंग में मधु का वास हो जाए। हमारे आत्मा में मधु का वास हो जाए। हमारे आत्मा में मधु हो, हमारे प्राण में मधु हो, हमारी इन्द्रियों में मधु हो। तुम हमारी वाणी में वर्चस्विता का मधु उत्पन्न कर दो जिससे हम परस्पर वर्चस्वती वाणी ही बोलें –

८. अश्विना सारघेण मा, मधुमाङ्क्तं शुभस्पती। यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु॥ - अथर्व. ९.१.१९ - अन्त में मैं पुनः प्रकृति की एक – एक कणिका से मधु की पुकार करता हूँ। मेरे ऊपर मधु – वर्षा हो, मेरे राष्ट्र पर मधु – वर्षा हो, भूमि के सब राष्ट्रों पर मधु – वर्षा हो, मानवमात्र मधु से स्नात हो जाए।

आर्य समाज सान्ताक्रुज, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्षः ४ अंक ३ (मार्च – २०१३)
दयानंदाब्दः १८९, विक्रम सम्वत्: २०६९
सृष्टि सम्वतः १, ९६, ०८, ५३, ११३

प्रबन्ध संपादकः चन्द्रगुप्त आर्य
संपादकः संगीत आर्य
सह संपादकः संदीप आर्य
कार्यकारी संपादकः विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता

विज्ञापन की दरेः शुल्कः
पूरा पृष्टः रू ३,०००/- एक प्रतिः रू. ९/-
१/२ पृष्टः रू २०००/- वार्षिकः रू. १००/-
१/४ पृष्टः रू १५००/- आजीवनः रू. १०००/-
विशेषांक की दरें भिन्न होंगी।

वर्गीकृत विज्ञापन
रू.१०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रू. ५००/-
चेक / डीडी / मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुम्बई के बाहर के चैक न भेजें। विज्ञापन सामग्री १०तारीक तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पताः आर्य समाज सान्ताक्रुज़ (विठ्ठलभाई पटेल मार्ग)
लिंकींग रोड, सान्ताक्रुज़ (प.) मुम्बई – ४०००५४
फोनः २६६०२८००, २६००२०७५

अनुक्रमाणिका	पृष्ठ संख्या
मधु का झरना	२
सम्पादकीय	३
सृष्टी रचना	४
महर्षि दयानन्द जन्मोत्सव मनाया	५
क्षमा के महादानी स्वामी दयानन्द	६-७
ईश्वरप्राणिधान	८
ऋग्वेद सम्मेलन	९
दुर्गुणों का राजा कौन	१०-१२
यज्ञ द्वारा वर्षा	१३-१४
मरना तो सब को है, जी के	१५
वही सुख	१६

सम्पादकीय

अमर बलिदानी

दि. २३ मार्च १९३१ के दिन शहीद भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरू को फांसी दी गयी थी। इसी दिन को हम शहीदी दिवस के रूप में मनाते हैं। इनके बलिदान को हम कभी भी भुला नहीं सकते। प्रश्न यह है कि क्या हम सिर्फ शहीदों को याद करके अपनी इतिश्री समझ लेते हैं ?

एक-एक बलिदानी जिसने अपने घर-परिवार का सुख, मोह, ममता, विरासत को त्यागते हुए देशवासियों के लिये अपने आप को आहुत किया, उनके संपने थे कि स्वतन्त्र भारत में सब खुशहाल होंगे। गरीव–किसान सब खुश हो जायेंगे, देश समृद्ध हो जायेगा, आज आवश्यकता है यह समझने कि क्या हम देशवासी उनके सपनों के अनुरूप देश को संभाल रहे हैं!

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान ने अपने एक वक्तव्य में कहा था कि शहीद भगतसिंह एवं अन्य शहीदों ने अपने आपको बलिदान किया लेकिन देश की वर्तमान स्थिति को देखकर लगता है कि भविष्य में कभी भी राष्ट्र पर विपत्ति आयेगी तों कोई नवयुवक अपने आपको बलिदान नहीं करेगा। हमने शहीदों के परिवारों का कितना ख्याल रखा ? उनके सपनों का भारत बनाने में कितना योगदान दिया? किसानों, गरीबों के प्रति कितना त्याग किया ?

वर्तमान में हम देख रहे हैं कि इस देश में सबको समान अवसर मिले तों हैं लेकिन हकीकत में हर क्षेत्र में भाई-भतीजावाद, सत्ता का दुरूपयोग, पूंजीपतियों का प्रभाव, एवं असामाजिक तत्त्वों का बोलबाला ही देश पर हावी है। ईमानदार, देशभक्त, सरल, गरीब देशवासी के अधिकार पर, नेताओं बाहुबलियों, पूजीपतियों का वर्चस्व है। कहने के लिये भारत एक आर्थिक सुदृढ़ता वाला राष्ट्र विश्व को दिखाई दे रहा है किन्तु यह सच्चाई के विपरीत है। सिर्फ चन्द लोग ही सत्ता के प्रभाव से, धन के प्रभाव से और समृद्ध होते जा रहे हैं। आम आदमी आज और भी गरीब हो गया है। राष्ट्र को भोगवाद की कुसंस्कृति में फेंक दिया गया है। राष्ट्र की सारी शक्ति अनावश्यक, इन्द्रियों के सुख के साधन की ओर लगी हुई है। आम आदमी के स्वास्थ्य एवं शिक्षा की अवहेलना है। सरकार की अधिकांश नीतियां कागजों पर ही हैं। हकीकत में उन नीतियों की आड़ में प्रभावी व्यक्ति धन का दोहन कर रहे हैं। अस्तु !

कहने का तात्पर्य यह है कि शहीदों के बलिदान का सम्मान करते हुए यदि हमने उनके सपनों का भारत बनाने में अपना योगदान नहीं दिया तो यह हमारी उनके प्रति कृतघ्नता होगी। हम सब मिलकर प्रयास करें कि राष्ट्र की समृद्धि का लाभ प्रत्येक देशवासी को मिले। तभी बलिदानियों की शहादत् सार्थक हो सकेगी।

संगीत आर्य
९३२३५७३८९२

सृष्टि रचना

गुरूदत्त

१. परमात्मा, २. जीवात्मा, ३. प्रकृति, ४. महत्, ५. आपः, ६. परिमण्डल, ७. मरूत्, ८. पंच महाभूत ये प्रथक प्रथक पदार्थ हैं । अब हम इनके बनने के विषय में, जैसा वेदों में कहा है, कथन करेंगे । जगत् वह सब – कुछ जो हमारे चारों ओर चलायमान है, उसे कहते है । इसे अंग्रेजी में 'क्रियेशन' = निर्मित सृष्टि कहते हैं । हमने बताया है कि सृष्टि-निर्माण का कारण तीन अक्षर पदार्थ हैं – परमात्मा, जीवात्मा और मूल प्रकृति । परमात्मा स्वयं रचित जगत् का अंग नहीं बनता, परन्तु वह सब-कुछ बनानेवाला है । जगत् के पदार्थ प्रकृति से बने हैं । सब पदार्थ दो श्रेणियों में बाँटे जाते हैं – शरीरी और अशरीरी । शरीरी (animate) पदार्थों के लक्षण न्यायदर्शन के प्रमाण (न्या.द.१.१.१०) से इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में कहे हैं । जिन पदार्थों में गुण (इच्छा. द्वेष, सुख-दुःख, प्रयत्न और चेतना) नहीं होते, उनको अशरीरी (in-animate) पदार्थ कहते हैं । यह हमने बताया है कि प्रकृति स्वधा के रूप में उपस्थित थी । यह कहाँ-कहाँ तक उपस्थित थी, इस विषय में मनुष्य को ज्ञात नहीं है । इस कारण ब्रह्मसूत्र में इसके विषय में यह कहा है – **अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॥ सा च प्रशासनात् ॥** (ब्र.सू.१-३-१०,११) अर्थात् – अक्षर पदार्थ (परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति) जहाँ तक विश्व में स्थान है वहाँ तक धारण करता है (भरे हुए है) । और वह (परमात्मा) इन पर शासन करता है ।

यह स्थान कहाँ-कहाँ तक है कोई नहीं जानता । साथ ही बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है –

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ (बृ. उ. ५-१-१)

अर्थात्-यह (व्योम) पूर्ण (सर्वत्र) है । इसमें से यह (निर्माण किया) भी पूर्ण (सर्वत्र) है । पूर्ण निकल जाने पर भी पूर्ण ही बच जाता है । इस वाक्य से यह प्रकट होता है कि इस सब-कुछ की सीमा नहीं । यह असीम है और अक्षर उसमें भरे पड़े हैं ।

इनमें परमात्मा तो एक ही है । वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सबका निर्माण करनेवाला है । वह विभु है । विभु का अर्थ है सर्वत्र व्यापक । एक ही सब स्थान पर है । जीवात्माएँ अनेक हैं । इनकी संख्या का ज्ञान नहीं । प्रकृति भी परमाणु-रूप है । है तो यह भी सर्वत्र, परन्तु जीवात्मा और प्रकृति के परमाणु असंख्य होने से पृथक्-पृथक् हैं । ये सब प्रलय-काल में समीप-समीप होने से भी, इन में निर्माण अथवा विघटन नहीं हो रहा होता । परमात्मा की इस इच्छा से उसकी शक्ति, जो हमने वेद (ऋ.१-१-१) में विद्यमान कही है और जिसको (ऋ.१०-१२९-२ में) 'आनीत अवातन्' कहा है, वह जागृत हो उठती है । परमात्मा की यह इच्छा क्यों होती है, इस विषय में अनेक स्थान पर कहा है कि यह ऋतों का पालन करते हुए होता है । इस विषय में भी वेद में कहा है – **ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत** । (ऋ.१०-१९०-१)

अर्थात् ऋतों के और सत्य के नियमानुसार स्थित होने से.... यह जगत् बना है और ऋतों के अनुसार ही इस अंतरिक्ष में विस्तार पाता है और फिर रात्रि अर्थात् प्रलय होती है । यह दिन और रात, रचना और प्रलय, एक-दूसरे के उपरान्त होते रहते हैं । अतः नियत समय पर अचलायमान शक्ति जागृत होती है और फिर घोर-शोर मचाती हुई अन्तरिक्ष में फैल जाती है (ऋ.१-१६३-१) । यह गति में आई शक्ति प्राण कहाती है । यह एक विशाल क्षेत्र में परमाणुओं पर लगाम की भाँति आरूढ़ हो जाती है । इस समय शक्ति का नाम 'वैश्वानर अग्नि' होता है । इस अग्नि के विषय में हम आगे चलकर वर्णन करेंगे ।

अग्नि के परमाणुओं पर लगाम लगने से (ऋ.१-१६३-२) परमाणुओं के भीतर त्रिगुणात्मक शक्ति आती है जिसे 'इन्द्र' का नाम दिया गया है । परमाणु बहिर्मुख हो जाता है । इन्द्र की तीनों शक्तियाँ सत्त्व, रजस्, तमस् बाहर को देखने लगती हैं और परमाणुओं में आकर्षण-विकर्षण होने से गति उत्पन्न होने लगती है । यह गति वायु अथवा मातरिश्वा कहाती है । इससे परमाणुओं के निबन्धन बनने लगते हैं । निबन्धन परमाणुओं के संयोग होते हैं । ये तीन प्रकार के होते हैं और आपः कहाते हैं।

ये आपः प्रकृति से ही बनते हैं। इस विषय में भी ऋग्वेद में कहा है –

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद् भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद् भ्याम्।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता। अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे॥ (ऋ. १-१३६-१)

इस मंत्र में कहा है कि प्रकृति पर जब परमात्मा की शक्ति सवार होती है तो प्रकृति बहुत प्रसन्नता अनुभव करती है। यह स्वेच्छा से उस तेज के अधीन होती जाती है और रचना-कार्य आरम्भ हो जाता है। यज्ञ रचना-यज्ञ में प्रकृति के परमाणु हव्य, घी की भाँति हवि बन जाते हैं। और परमाणु में परिवर्तन सुषुप्ति-अवस्था से जागृत-अवस्था में होते जाते हैं।

इसी सूक्त का अगला मंत्र है – **अदर्शि गातुरूरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः।**
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरूणस्य च। अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः॥ (ऋ. १-१३६-२)

कहा है कि-ऋतों (अनादि नियमों) का पालन करते हुए इसके भीतर शक्ति की रश्मियाँ बाहर को देखने लगती हैं। यह प्रकृति इन रश्मियों से ऐश्वर्यवती (चमकती हुई) दिखाई देती है। इन रश्मियों से परमाणु चमकते हैं और तेज दिखाई देने लगता है (प्रकाश हो जाता है)। इसी सुक्त में तीसरा मंत्र इस प्रकार है –

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती। मित्रस्तयोर्वरूणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः॥ (ऋ. १-१३६-३)

अर्थात्-इससे दो अति शक्तिशाली तत्त्व-मित्र और वरूण-नित्य दिनानुदिन प्रकृति के परमाणुओं से बनते चले जाते हैं। मूल प्रकृति के सजग होने पर ये दो शक्तिशाली तत्त्व बनते हैं और ये अपने अधीन एक तीसरे तत्त्व अर्यमा को रखते हैं।

तीसरा तत्त्व आवेश-रहित होता है। अर्यमा का अभिप्राय ही है रात का देवता, अर्थात् शक्ति-रहित देवता। शक्तिशाली तत्त्व इस आवेश-रहित को आकर्षित करने लगते हैं। यह उस समय की स्थिति का वर्णन है जब हिरण्यगर्भ (नेबुला) बनने लगता है। हिरण्यगर्भ की चमक इसी मित्र और वरूण की रश्मियाँ उत्पन्न करती हैं। कहा है मित्र और वरूण चमकने लगते हैं। इस सब समय प्रकृति के परमाणु पर अनादि शक्ति लगाम की भाँति आरूढ़ रहती है। यह वैश्वानर अग्नि कहाती है। असाम्यावस्था में परमाणु की शक्ति की रश्मियाँ ही यह प्रकाश उत्पन्न करती हैं जिनसे हिरण्यगर्भ चमकने लगता है।

"महर्षि दयानन्द जन्मोत्सव मनाया गया"

अध्यक्ष आर्य शिक्षण समिति बूढा

आर्य समाज एवं आर्य शिक्षण समिति बूढा द्वारा संचालित आर्य बाल मन्दिर उ.मा.वि. में आयोजित महर्षि दयानन्द जन्मोत्स्व में पधारे अध्यक्ष श्री रतनलाल जी आर्य ने बताया की वेदों में जीवन का सार है। वेदों का अनुसरण करके ही जीवन का वास्तविक कल्याण किया जा सकता है। व्यक्ति वेदों को सच्ची शिक्षा से ही संस्कारवान होता है। कार्यक्रम के मुख्य अतिथी श्री अर्जुनलाल नरेला प्रधान आर्य समाज नीमच, विषेश अतिथि श्री बंशीलाल जी आर्य अंतरंग सदस्य मध्य भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा व श्री सत्येन्द्र जी आर्य संस्कार विशेषज्ञ ने अपने ओजस्वी उद्बोधन में महर्षि दयानन्द के बताये मार्ग पर चलते हुए वेदों की ओर लौटकर जीवन को संस्कारवान बनने का संकल्प लेने की शिक्षा दी। कार्यक्रम का प्रारम्भ विद्यालय के बच्चों द्वारा आचार्य रघुवीर शास्त्री के सानिध्य में ईश्वर स्तुति ब्रह्म यज्ञ एवं देव यज्ञ के साथ किया गया। महर्षि दयानन्द के जन्मोत्सव पर विद्यालय स्तर पर विभिन्न प्रतियोगिता जैसे मंत्र पाठ, श्लोक वाचन, स्वस्ति वाचन, वाद विवाद प्रतियोगिता प्रबुद्ध वर्ग एवं छात्र/छात्रा स्तर के लिए आयोजित की गई। विजेता, उपविजेता को पुरुस्कार स्वरुप सत्यार्थ प्रकाश एवं ऋग्वेदिभाष्य भूमिका एवं अन्य आर्य साहित्य भेंट किया गया। कार्यक्रम का संयोजन आर्य शिक्षण समिति के अध्यक्ष डॉ. रामनिवास जी पाटीदार ने किया कार्यक्रम का संचालन उ.मा.वि. के शिक्षक श्री श्यामलाल जी जोकचंद ने किया तथा आभार प्रदर्शन विद्यालय के प्राचार्य श्री एन. एल. चौधरी के द्वारा किया गया। कार्यक्रम का समापन शान्ति पाठ के साथ विधिवत सम्पन्न हुआ।

"क्षमा के महादानी स्वामी दयानन्द"

खुशहाल चन्द्र आर्य

विश्व में ऐसे अनेकों महापुरूष हुए हैं जिन्होंने अपने मारने वाले को क्षमा कर दिया। किसी ने भारी नुकसान करने पर क्षमा कर दिया। किसी ने चोट मारने वाले को क्षमा कर दिया, पर स्वामी दयानन्द की क्षमा, इन सभी क्षमा करने वालों से एक अलग ही स्थान या कीमत रखती है। उनकी दानशीलता सर्वोपरि है। वैसे तो महर्षि ने अपने जीवन में एक नहीं दो नहीं, दस नहीं अनेक स्थानों पर अपनी दानशीलता का परिचय दिया है। यहाँ हम केवल चार-पाँच ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जो इसी भाँति हैं।

१.राव कर्णसिंह को क्षमा कियाः- सन् १८६८ में स्वामी जी कर्णवास में अपनी पुरातन में ही आकर ठहरे। उसी समय गंगा स्नान का मेला था। सहस्रो नर-नारी एकत्रित हुए थे। उसी समय राव कर्ण सिंह भी स्नानार्थ आये हुए थे। जब उसने सुना कि स्वामी दयानन्द यहाँ आये हुए हैं और वे हमारे अवतारों की और गंगा जी की निन्दा करते हैं तो वह अपने नौकरों सहित स्वामी जी की कुटिया में आ गये। यह सायं का समय था, स्वामी जी उपदेश कर रहे थे। श्रोता गण एकाग्रचित उपदेशामृत-पान करने में निमग्न थे। उसी समय कर्ण सिंह ने आकर स्वामी जी से कहा कि मैंने सुना है कि तुम अवतारों की और गंगा जी की निन्दा करते हो , स्मरण रखो! यदि मेरे सामने निन्दा की तो मैं बुरी तरह पेश आऊँगा, स्वामी जी ने कहा, मैं निन्दा नहीं करता हूँ किन्तु जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही कहता हूँ। तब राव बोला "गंगा गगेति" इत्यादि श्लोकों के नाम, कीर्तन, दर्शन, स्पर्शन से पाप का नाश होता है। स्वामी जी ने कहा – ये श्लोक साधारण लोगों की कपोल कल्पित है। माहात्यम सब गप्प हैं। पाप का नाश और मोक्ष- प्राप्ति वेदानुकूल आचरण से होगी, अन्यथा नहीं। यह सुनकर उसने स्वामी जी पर दुर्वचन-वर्षा की झड़ी सी लगा दी और आपे से बाहर हो गये और स्वामी जी के ऊपर तलवार का वार करने के लिए आगे बढ़े। वे तलवार चलाना ही चाहते थे, स्वामी जी ने ऊपर हाँथ ऊपर कर उसके हाथ से तलवार छीन ली और भूमि पर टेककर दवाब देकर तलवार के दो टुकड़े कर डाले। स्वामी जी ने कहा कि मैं सन्यासी हूँ, तुम्हारे किसी भी अत्याचार से चिढ़ कर तुम्हारा अनिष्ट चिन्तन नहीं करूँगा, जाओ, ईश्वर तुम्हें सुमति प्रदान करे। स्वामी जी ने तलवार के दोनों खण्ड दूर फेंक कर, राव महाशय को बिदा कर दिया।

२.एक पहलवान को सबक सिखायाः- यह सोरों की घटना है। स्वामी जी एक दिन उपदेश दे रहे थे। बीसियों मनुष्य दत्त-चित्त होकर श्रवण कर रहे थे। उसी समय वहाँ एक हट्टा कट्टा, दण्ड पेल पहलवान आ गया, एक मोटा सोटा कन्धे पर रखे सभा सरोवर को चीरता-फाड़ता सीधा स्वामी जी की ओर बढ़ा, उसका चेहरा मारे क्रोध के तमतमा रहा था।आँखें रक्त बर्ज थी भौंवें तन रही थीं और माथे पर त्योरी पड़ी हुई थी।होठों को चबाता और दांतो को पीसता हुआ वह बोला –अरे साधु , तू ठाकुर पूजा का खन्डन करता है और श्री गंगा मैया की निन्दा करता है , देवताओं के विरुद्ध बोलता है। झटपट बता, तेरे किस अंग पर यह सोटा मारकर तेरी समाप्ति कर दूँ ? " ये वचन सुनकर ,एक बार तो सारी सभा विचलित हो गई। परन्तु स्वामी जी की गम्भीरता में रत्ती भर भी न्यूनता न आई उन्होंने प्रशान्त भाव से मुस्कराते हुए कहा कि भद्र। यदि तेरे विचार में मेरा धर्म – प्रचार करना कोई अपराध है तो इस अपराध का प्रेरक मेरा मस्तिष्क ही है। यही मुझे खण्डन की बातें सुझाता है, सो यदि तू अपराधी को दण्ड देना चाहता है तो मेरे सिर पर सोटा मार, इसी को दण्डित कर, इन वाक्यों के साथ ही, स्वामी जी ने अपने नेत्रों की ज्योति उसकी आँखों में डालकर उसे देखा। जैसे, बिजली कौंध कर रह जाती है, धधकता हुआ अंगारा जल धारा-पात से शान्त हो जाता है, वैसे ही तत्काल वह बलिष्ट व्यक्ति ठण्डा हो गया, श्री चरणों में गिर पड़ा, अनवरित अश्रु मोचन करता हुआ अपना अपराध क्षमा कराने की याचना करने लगा। स्वामी जी ने उसे आश्वासन दिया और कहा, "तुमने कोई अपराध तो किया ही नहीं। मुझे मारते तो कोई बात थी, अब यों ही क्यों रो रहे हो ? जाओ ! ईश्वर तुम्हें सत्य मार्ग प्रदान करे।"

३.बच्चों को लड्डु खिलाएः- स्वामी जी लाहौर से सन् १८७७ में अमृतसर पहुँचे। यहाँ वे मियां मुहम्मद खाँ की कोठी में ठहरे। उनके पधारने से अमृतसर के वासियों में धर्म प्रेम उमड़ पड़ा। शत्-शत् और सहस्त्र-सहस्त्र पुरूष श्री दर्शनों को आने लगे, स्वामी जी ने लोगों के उत्साह को देखकर उसी दिन सायंकाल, व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। श्री के उपदेशों को सब नर नारी श्रद्धा पूर्वक सुनते थे। यहाँ स्वामी जी ने प्रतिमा पूजन, अवतारवाद और मृतक श्राद्ध आदि मिथ्यामूलक मन्तव्यों का घोर खण्डन किया जिसमें पण्डितों में हलचल मच गई। वहीं एक पाठशाला के अध्यापक पण्डित ने अपने छोटे-छोटे बच्चों से कहा "आज कथा में हम सब चलेंगे। तुम अपनी-अपनी झोलियों में ईटों के रोड़े भर लो। वहाँ जिस समय में संकेत करूँ, तुम तत्काल, कथा कहने वाले पर इन्हें फेंकने लग जाना। इसके बदले में कल तुमको लड्डू दिये जायेंगे।

वे अबोध बालक अपने अध्यापक के बहकाने में आ गये, और झोलियों में ईंटों के टुकड़े लिये व्याख्यान-स्थल पर आ पहुँचे। व्याख्यान रात के आठ बजे समाप्त हुआ करता था। थोड़ा सा अन्धेरा होते ही, अध्यापक का संकेत पाकर वे अनजान लड़के स्वामी जी, पर कंकड़ बरसाने लगे। एक बार में सारी सभा चलायमान हो गई, परन्तु स्वामी जी ने सभा को तुरन्त शान्त कर दिया। पुलिस के कर्मचारियों ने, अपने चातुर्य से उन उपद्रवी बालकों में से कुछ एक को पकड़ लिया और व्याख्यान की समाप्ति पर स्वामी जी के सामने उपस्थित किया। पुलिस के पंजे में पड़े हुए वे बालक चिल्लाते और फूट-फूटकर रोते थे।स्वामी जी नें उनको ढ़ाढ़स बन्धाया और ईंट मारने का कारण पूछा। तब वे हिचकियां लेते हुए बोले,"हमको अध्यापक जी ने लड्डुओं का लोभ देकर ऐसा करने को कहा था। स्वामी जी ने करूणा भाव से तत्काल वहाँ मोदक मंगाए और उन बालकों में बांटकर कहा,"तुम्हारा अध्यापक तो सम्भव है तुम्हें लड्डू न भी देवे, इसलिये मैं ही दिये देता हूँ।" फिर स्वामी जी ने उन ना-समझ बच्चों को छुड़ा दिया। मैंने महाराजा रणजीत सिंह की जीवनी में पढ़ा था कि एक बच्चे ने आम के पेड़ से आम तोड़ने के लिए पत्थर फेंका। संयोगवश वह पत्थर आम में न लग कर महाराजा रणजीत सिंह वहीं जाकर आ रहे थे, उनके माथे पर जा लगा। बच्चा भय के मारे रोने लगा परन्तु महाराजा ने कहा,"बच्चा रोओ मत, इसमें तुम्हारा क्या दोष है। तुमने तो आम तोड़ने के लिए पत्थर आम के पेड़ पर मारा था,पर वह पत्थर वहाँ न लग कर मेरे मानो लग गया। कोई बात नहीं, इस प्रकार वह कह कर बच्चे का रोना बन्द करवाया। इस घटना से महाराजा रणजीत सिंह की बड़ी उदारता प्रकट होती है। वे क्षमा के दानी थे, पर स्वामी जी ने बच्चों का रोना तो बन्द करवाया ही, ऊपर से लड्डू भी दिये, इसलिए स्वामी जी क्षमा के महादानी हुए।

४.जगन्नाथ हत्यारे को जीवन दान दियाः- यह घटना तो सर्वविदित है कि स्वामी जी उदयपुर से शाहपुरा अजमेर व पाली होते हुए सन् १८८३ को जोधपुर पहुँचे। यहाँ स्वामी जी का महाराजा यशवन्त सिंह ने भव्य स्वागत् किया। कुछ दिनों बाद की घटना है कि महाराजा के पास स्वामी दयानन्द जी ने नन्ही जान वैश्या को बैठा देख लिया। स्वामी जी ने कहा "केसरी की कन्दरा में, ऐसी कल्मष कलुषित कुक्करी के आगमन का क्या काम?" यह सुनकर नन्हीं जान आग बबुला हो गई और स्वामी जी को मारने का षड्यन्त्र रचने लगी। उसने जगन्नाथ रसोइया जो स्वामी जी को खिलाता-पिलाता था, उसको पटाने का निश्चय किया। जगन्नाथ को कुछ लोभ देकर अपने वश में करके उसे दूध में जहर के साथ काँच पीसकर स्वामी जी को पिलाने के लिए कहा। जगन्नाथ वैसे तो स्वामी जी का अच्छा भक्त था, पर लोभ में आकर वह इस दुष्कर्म को करने के लिए उद्यत हो गया। स्वामी जी को गहरी नींद आ रही थी इसलिये बिना कुछ विचारे उन्होंने दूध तो जगन्नाथ के हाँथ से लेकर पी लिया परन्तु तुरन्त ही उन्हें ज्ञात हो गया की दूध में जहर मिलाया हुआ था। स्वामी जी ने सेवकों से जगन्नाथ को बुलाया और कहा "हे, जगन्नाथ ! तूने यह क्या किया?" स्वामी जी के भाव देखकर जगन्नाथ समझ गया, उसने अपनी गलती तो स्वीकार कर ली, पर उसने स्वामी जी जैसे महान् परोपकारी, उदार, सहृदय, प्रकाण्ड वेदों का विद्वान्, बाल ब्रह्मचारी के प्राण लेकर मानव – मात्र का जो कल्याण किया है, इस जुल्म के लिए वह सदा के लिए कलंकित बना रहेगा। फिर स्वामी जी ने उसे ५००/- रूपये देकर कहा "हे जगन्नाथ ! तुमने काम तो बहुत बुरा किया, मुझे अभी बहुत काम करना बाकी था, पर जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। ईश्वर को यही मंजूर था, इसमें तुम्हारा क्या दोष है। पर अब तुम जोधपुर की सीमा से रातों – रात निकल कर नेपाल चले जाओ, नहीं तो महाराजा तुम्हें मारे बिना नहीं छोड़ेगा। इस प्रकार स्वामी जी ने अपने प्राणों के भक्षक जगन्नाथ के प्राण बचाकर संसार में एक अद्भुत उदाहरण पेश करके, क्षमा के दानी ही नहीं, महादानी कहलाए।

ईश्वरप्रणिधान

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

नियमों में पांचवां नियम है – "ईश्वरप्रणिधान"। ईश्वर-प्रणिधान कहते हैं – "ईश्वर अर्थात् उस परम गुरू परमात्मा में अपने सब कर्मों को अर्पण कर देना। इस ईश्वरप्रणिधान को, ईश्वर के प्रति अपने आपको पूर्णतया समर्पित कर देने को भक्ति विशेष भी कहते हैं।

अब जिस भक्त में, साधक में इस भक्तिविशेष का प्रादुर्भाव हो जाता है वह फिर जो कुछ भी करता है, वह प्रभु के लिए ही करता है। अब जब इस जगत् में ही अपने से किसी ज्येष्ठ श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए कोई कुछ वस्तु फल वस्त्र आदि देना चाहता है तो फिर वह सोचता है कि वह फल वस्त्र आदि घटिया न हो, सड़ा-गला न हो, वरन् बढ़िया से बढ़िया हो, उत्तम से उत्तम हो तो फिर जिस साधक में अपने प्राण प्रिय प्रभु के प्रति भक्ति ही नहीं वरन् भक्ति विशेष है, श्रद्धा वा निष्ठा विशेष है, वह साधक फिर भला ऐसे सड़े, गले, असुन्दर, गिरे हुए कर्म कैसे कर सकता है ? वह तो फिर जहां भी, जब भी, जो भी कुछ कर्म करेगा, वह अच्छा ही अच्छा, सुन्दर ही सुन्दर, उत्तम ही उत्तम कर्म होगा क्योंकि उसे तो अपना वह कर्म अपने देवाधिदेव परम पिता परमेश्वर को समर्पित करना है। सो यह "ईश्वरप्रणिधान" भक्त की, साधक की, ईश्वर में भक्तिविशेष होने के कारण सर्वप्रथम उस भक्त-साधक को ही बदलता है। अर्थात् यह उसके कर्मों को सुकर्मों में बदलता है, यह उसकी दृष्टि को सुदृष्टि में, उसके श्रवण को सुश्रवण में बदलता है। यह उसके चिन्तन को सुचिन्तन में, उसके विचारों को सुविचारों में, उसके वचनों को सुवचनों में बदलता है, उसके आहार-विहार और व्यवहारों को सदाहार-सुविहार और सुव्यवहारों में, परिवर्तित कर देता है। फिर उसका यह ईश्वर-प्रणिधान, यह भक्तिविशेष उसको प्यारे प्रभु में समर्पित कर उसको कर्मों की फलासक्ति से भी विरक्त कर प्रभु के अद्वितीय प्यार का भी भाजन बनाता है। अब ऐसा व्यक्ति जिसके इस पांचवें नियम के आधार पर ईश्वर में अत्यन्त भक्तिभाव के कारण सब कर्म ही सत्कर्मों में बदल जाएं। सब वचन ही सुवचनों में बदल जाएँ, हिंसा सर्वथा अहिंसा में, झूठ यदि थोड़ा बहुत जीवन में बचा रह गया हो तो वह भी सत्य में, स्तेय अस्तेय में, व्यभिचार सदाचार में, परिग्रह अपरिग्रह में, अशौच पूर्णतया शौच में, असन्तोष में, अतप तप में, अच्छी पुस्तकों का अस्वाध्याय स्वाध्याय में – पढ़ने में बदल जाए, काम निष्कामता में, क्रोध शान्ति में, लोभ अलोभ में, मोह सहज स्नेह में, अहंकार नम्रता में बदल जाए, ईर्ष्या-डाह अर्थात् दूसरों की उन्नति-बढ़ती न सह सकना, उनकी गति-प्रगति में सदा फूले न समाने में बदल जाए और वह व्यक्ति फिर उन कर्मों को भी उस प्राणप्रिय प्रभु में समर्पित करके फिर उन कर्मों को न कभी गाए, नहीं बताए, नहीं जताए तो फिर ऐसा व्यक्ति भला किस को नहीं भायेगा। ऐसी नारी भला किसको प्रिय नहीं होगी, ऐसा पुत्र वा भाई भला किस को नहीं अच्छा लगेगा ?

इस लोक में वर्तमान ऐसा व्यक्ति फिर भले ही आंख मुख मूंद कर बहुत बड़ी-बड़ी सन्ध्या-उपासना न करता हो, बहुत आसन-वासन भी न करता हो, बस स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए थोड़ा बहुत टहल लेता हो वा हल्के-फुल्के आसन आदि कर लेता हो, और जीवन उसका योगियों जैसा हो, व्यवहार उसका देवों-साधकों जैसा हो तथा वह इन शौच, सन्तोष आदि नियमों का दिल से पालन करता हुआ, यमों का अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का जी-जान से पालन करता हो। यमों में भी जो साधना का सब से बड़ा मूल अहिंसा है, उसके अनुसार जो मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट, हानि और नुकसान न पहुंचाता हो, किसी को बाहर से मारना, पीटना, काटना, दुःख-पीड़ा पहुंचाना तो दूर रहा, ह्रदय से भी जो किसी को मारने, काटने या पीड़ा पहुंचाने का न सोचता हो। नहीं नहीं इतना ही नहीं, विधेयात्मक दृष्टि से जो मन, वचन, कर्म से सब को सहायता सहयोग देकर सुख, शान्ति और प्रसन्नता देना चाहता हो, ऐसे उस योगी ह्रदय वाली पत्नी आदि से भला फिर कोई उस को योगी वा योगिन दिल से न कहे, यह कैसे हो सकता है ? यद्यापि शास्त्रीय ढंग से जो पूर्व पुस्तक "यम-नियम" पर लिखी गई है, वह भी व्यावहारिक जीवन में लाने पर ही सार्थक हो सकती है और इसी उद्देश्य से उस को लिखा और प्रकाशित भी किया गया है। परन्तु फिर भी इस यम-नियम नामक व्यावहारिक योग की पुस्तक लिखने का अभिप्राय यह है कि साधक कभी यमों की अवहेलना करके केवल नियमों में ही न लगा रहे बल्कि वह यमों का भी सतत पालन करे और वह अपने दैनिक जीवन में, दैनिक व्यवहारों में घर, परिवार एवं समाज में सर्वत्र सहज ही प्रभु साक्षी में साधकों जैसे व्यवहारों को सोच-समझ कर आचरण में ला सके और जीवन में सच्चा योगी बन सके। आशा है इस का स्वाध्याय करने वाले महानुभाव लेखक के अभिप्राय को ध्यान में रखकर इस पुस्तक को अपनी जीवनचर्या में दिल से स्थान देंगे।

सचमुच जिस दिन वह साधक दिल से प्रभु साक्षी में ऐसा बनेगा तो फिर वह भले ही अपने को बहुत बड़ा साधक योगी न कहे तो भी घर-परिवार के लोग ही नहीं वरन् अन्य सब भी दिल से उसको साधु-योगी जानने, मानने और कहने लगेंगे और वैसे ही दिल से उनको मान-सम्मान भी देने लगेंगे ।

ऐसे व्यावहारिक योगमय जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ जब वह शनैः-शनैः अभ्यास में भी श्रद्धा भक्ति से बैठने लगेगा तो वह उस प्राणप्रिय प्रभु के दिव्य आनन्द को भी पायेगा और उसमें विभोर भी होने लगेगा तो यह उस व्यक्ति की अपने ढंग की एक और भी बड़ी उपलब्धि होगी । जो उसको हर पल इस संसार का ही नहीं उस प्राणप्रिय प्रभु का भी बहुत प्यारा बना देगी । तब उसको वह दिव्य धन उपलब्ध हो जायेगा जिसे पाकर फिर उनके लिए कुछ पाने वा उपलब्ध करने को शेष नहीं रहेगा ।

सो सच्चे साधकों को चाहिए कि वे जी-जान से जिस भी स्थान पर वा जिस भी स्थिति में वे हैं, वे साधना प्रारम्भ कर दें । इस पुस्तक में तो इसलिए इसको गृहस्थाश्रम के उस पड़ाव से प्रारम्भ किया गया है जिससे प्रायः सब लोग भोग का ही प्रारम्भ समझते और करते हैं, उन्हें वहीं से ही योगारूढ़ होने की सहज सही दिशा मिल सके । तथा इसलिए भी कि हर व्यक्ति, हर सामान्य गृहस्थ भी इस पुस्तक से प्रेरणा लेकर अपने जीवनोद्देश्य साधना-योग की ओर अबाध गति से अग्रसर हो सके ।

इसके विपरीत जो सदा अपने लिए ही सोचता है, उसका सदा अपनी ओर ही ध्यान जाता है । जिसको बीड़ी, सिगरेट, हुक्के की लत लगी रहती है ? भांग, अफीम, चरस, गांजा, जिसको नित्य भाता है, शराब कबाब से भी जो परहेज नहीं करता है ? यहां तक कि उसकी हाजत होने पर फिर जो इसको पीने में पत्नी, पुत्री, पुत्र एवं पुत्रवधू के सामने भी शर्म नहीं करता ? फिर जो रोटी, कपड़ा मिले या न मिले पर यह सब तो उस को मिलना चाहिए ही । ऐसी आदतों के साथ यदि जुए, सुट्टे आदि की लत जिसको लग गई हो । और फिर इसके साथ-साथ इसके परिवार का भी क्या हाल होगा ? यह प्रभु ही जाने । सब से पहले तो यह अपने को खाता है, अपने जेब, पर्स वा बैंक बैलेंस को खाता है फिर उस से इसकी पूर्ति नहीं होती तो फिर यह अपनी पत्नी के पर्स पर, धन पर, बैंक बैलेंस पर गिद्ध की तरह झपट्टा मारता है । और यहां से भी इसका जी नहीं भरता तो फिर यह पुत्र-पुत्रियों की जेबों में भी यह रात-प्रभात को हाथ मारता है और उनको साफ करने में भी शर्म नहीं करता । मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूं जो सब कार्यों को छोड़ कर अपनी इन आदतों के कारण पत्नी और तीनों पुत्रों से उपलब्ध धन से भी तृप्त नहीं हुआ तो घर से वैरागी होकर जो बेटा चला गया उसको कहता है – बेटा ! मेरी यह अफीम की लत पड़ गयी है । मैं इसके बिना नहीं रह सकता । अगर तू कुछ रूपये भेज दिया करे तो मुझे कुछ राहत मिल जायेगी । बाप पर तरस खाकर जिस वैरागी बेटे को मनुष्य चाहता है कि वह उसे कुछ दे, उससे भी धन लेकर वह अपनी लत पूरी करता रहता है । ऐसा व्यक्ति जो केवल अपने बारे में ही सोचता है, अपनी ही हाजतों को, अपनी ही नानाविध निकृष्ट इच्छाओं और हवसों को पूरी करने को अपने ही नहीं, घर में सब के धन पर दृष्टि डालता है । तब जैसे वह अपने लिए ही सोचता है, उसके लिए अपने पास वह चोरी छिपे धन रखता है, उस धन वैभव पर घर-परिवार वालों की दृष्टी नहीं पड़ने देता और कोई पूछता है तो झूठ बोलकर कहता है – "मेरे पास तो कुछ भी नहीं है । "ऐसे ही घर, परिवार वाले भी उससे अपने धन, वैभव को छिपाए फिरते हैं, यह सोचकर कि यह स्वयं तो सदा बर्बाद रहता है । पर अगर हम सब सतर्क नहीं रहे तो यह हम सब को भी बर्बाद कर हमें कहीं का नहीं छोड़ेगा । ऐसा व्यक्ति तो फिर अपने लिए ही, अपनी वासनाओं, अपनी ही लतों के लिए सदा ही सोचता रहता है, उनको पूरा करने के लिए फिर वह चोरी भी करता है, झूठ भी बोलता है, अनैतिक कर्म भी करता है, हिंसा भी करता है, सब की समुचित आवश्यकताओं को भी कुचलता है । वह तो अपने ही घर, परिवार में रहने वाले माता, पिता, पत्नी, पुत्र, पुत्रियों आदि के प्रति अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह का पालन नहीं कर पाता और उन्हीं का भी स्नेह, सम्मान एवं विश्वास का पात्र नहीं बन पाता तो फिर वह समाज के प्रति इन नियमों का पालन कर कैसे स्नेह, सम्मान और यश का पात्र बन सकता है ! अतः मनुष्य को चाहिए कि सर्वप्रथम वह घर से ही इन यमों का पालन करे, अपने परिवार में ही इन अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का दिल से पालन करना आरम्भ करे, ताकि वह अपने इस साधनामय जीवन से स्वयम् आनन्द लाभ प्राप्त करे और अन्यों को भी आनन्दित कर सके ।

"ऋग्वेद सम्मेलन" - वैदिक मिशन मुम्बई, संस्कृत अकादमी दिल्ली के सौजन्य से आर्य समाज सांताक्रुज में २२ से २४ मार्च २०१३ को 'ऋग्वेद –सम्मेलन' का आयोजन करने जा रहा है । इस कार्यक्रम में देश के लगभग १०० वैदिक विद्वान भाग लेंगें । दिल्ली सरकार की संस्कृत अकादमी के सचिव श्री डा. धर्मेनुकुमार शास्त्री एवं अन्य पदाधिकारी भी इसमें सम्मिलित होने जा रहे हैं । इस सम्मेलन की अध्यक्षता स्वामी प्रणवानन्द जी सरस्वती करेंगें ।

संदीप आर्य

मन्त्री वैदिक मिशन मुम्बई

दुर्गुणों का राजा कौन

कमलेशकुमार छ. शास्त्री

प्रत्येक मानव में कुछ सद्‌गुण होते हैं और कुछ दुर्गुण । किसी में सद्‌गुणों की मात्रा अधिक होती है, अतः वह गुणीजन या सज्जन कहाता है और किसी में दुर्गुणों की मात्रा अधिक होती है, अतः वह दुर्गुणी अथवा दुर्जन कहाता है । संसार में गुण ही गुण रखने वाले या दुर्गुण ही दुर्गुण रखने वाले किसी एक भी मानव की संकल्पना करना संभव नहीं है । अतः मानव को गुण-दुर्गुणों का मिलाजुला रूप मानना ही ठीक प्रतीत होता है ।

ऐसी स्थिति में जब गुण या दुर्गुण की मात्रा की अधिकता के आधार पर सज्जनता या दुर्जनता का निर्धारण होता है, तब यदि हम सज्जन बनना चाहते हैं तो हमें अपने अंदर दो लक्ष्य रखने होते हैं । एक तो गुणों की वृद्धि करने का तथा दूसरा दुर्गुणों पर विजय पा कर उनसे मुक्त होवें । इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति करते हुए हम अपनी सज्जनता की स्थापना कर सकते हैं ।

दुर्गुणों पर विजय पा कर उनसे मुक्त होने के लक्ष्य की पूर्ति करने के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि हम मानवों में जो जो दुर्गुण संभावित हैं, उनमें सब से बड़ा दुर्गुण कौन सा है ? मानव में पाये जाने वाले दुर्गुणों का राजा कौन है ? यदि हमें मानव में स्थित दुर्गुणों के राजा का पता चल जाय, तो हम उसे जीत कर समग्र दुर्गुणों पर विजय पा सकते हैं । जैसे कि शतरंज के खेल में राजा पर विजय पा लेने पर अन्य सभी मन्त्री, सैनिक आदि जीत लिये जाते हैं, वैसे ही दुर्गुणों के राजा पर विजय पा लेने पर अन्य सभी दुर्गुणों पर भी विजय प्राप्त हो जाती है । इसके विपरीत उसी शतरंज के खेल में राजा की ओर लक्ष्य न रख कर, यदि कोई आदमी मात्र सैनिकों पर लक्ष्य रखे, और उन पर विजय पाने के लिये प्रयत्न किया करे, तो उस प्रयत्न से संपूर्ण विजय प्राप्त नहीं होती । उसी प्रकार यदि कोई आदमी अपने समग्र दुर्गुणों पर विजय पाना चाहता है, तो उसे प्रथम तो दुर्गुणों के राजा का पता कर लेना आवश्यक है, और फिर उसे ही जीतने में समग्र शक्ति लगा देने की आवश्यकता है । आईये, जरा विचार करें कि हमारे अंदर विद्यमान दुर्गुणों का राजा कौन है ? हमारे विचार से मनुष्य में जितने भी दुर्गुण संभावित है, उन में राजारूप दुर्गुण तो "अन्यों के प्रति द्वेष रखना" है । एक उदाहरण से हम इस बात को समझने का प्रयत्न करेंगे । आप सोने का एक हार लेकर किसी गोशाला में चलें जायें । वहाँ जाकर किसी एक गाय को सोने का हार पहना कर सम्मानित करें । अन्य गायें उस सम्मान कार्य की साक्षी बनेंगी । पर कोई भी गाय सम्मान पाने वाली गाय का द्वेष न करेगी । ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि गोशाला की सभी गायें, आप के पास आ कर आपके हाथों में रखे सोने के हार को सुंघ कर यह जरुर जानना चाहेंगी कि आप कुछ खिलाने के लिये तो नहीं आये हैं ? यदि आप गाय के खाने की कोई वस्तु ले कर आयें हैं, तो उसे पाने की इच्छा से वे गायें कुछ समय के लिये आप में द्वेष कर लेंगी तथा यह चाहेंगी कि यह खाना मुझे ही मिले । पर यदि आप कोई खाने का सामान नहीं लायें हैं, तो गायें आपके पास आयेंगी अवश्य, पर आने वाली प्रत्येक गाय को जब यह पता चल जायेगा कि आप के हाथ में हमारे खाने योग्य कोई वस्तु नहीं हैं, तो वे सभी गाय आपको छोड कर शान्ति से निश्चिंत हो कर दूर चलीं जायेंगी । आप सोने का हार किसी गाय को पहना देवें दूसरी गायों को उससे कोई द्वेष न होगा । परंतु आप कल्पना करें कि यदि गोशाला के स्थान पर कोई मानवों से भरा हुआ हॉल हो और उस में गायों के स्थान में मनुष्य बैठें हों और उनमें से किसी एक को आप सोने का हार प्रदान कर रहे हो , तो ? संभवतः उस सम्मान के साक्षी बनने वाले अन्य सभी मनुष्यों के मन में यह विचार उठेगा कि मुझे सोने का हार क्यों नहीं दिया जा रहा ? इन सभी में सोने के इस हार को पाने के सब से ज्यादा योग्य तो मैं ही हूँ ।

मानव के मन में उठने वाली इस भावना के पीछे , वास्तव में तो दूसरे के प्रति मन में उठने वाला द्वेषभाव कारणभूत है । ऐसी कई घटनाओं पर विचार करने पर यह अनुभव कर सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के मन में कहीं न कहीं दूसरों के प्रति

थोडा बहुत द्वेष छिपा होता है। कई लोग तो इसे देख ही नहीं पाते। राजा जैसे सैनिकों से तथा अपने दरबारी जनों से घिरा रहता है , और सामान्य जन को उसके दर्शन दुर्लभ होते हैं , वैसे ही इस दुर्गुणों के राजारुपी द्वेष की भी स्थिति है। यह द्वेषरूप राजा भी अनेक सैनिकरूप तथा दरबारीरूप अन्य दुर्गुणों से घिरा रहता है अतः सामान्य आदमी को इस के अपने अंदर इस के दर्शन ही नहीं होते हैं। यह तो किसी सच्चे योगी की कृपा से हमें इस के अपने अंदर दर्शन होते हैं।

वस्तुतः मनुष्य के रूप में हमारा कर्तव्य है कि किसी के सम्मान के अवसर पर हम अपने मन में द्वेष का भाव लाने की वजह हर्ष का भाव मन में लाएँ। परन्तु यह द्वेषरूप दुर्गुण का हमारे चित में इतना व्यापक तथा गहरा प्रभाव हो गया होता है कि इससे हम चाहते हुए बच नहीं पाते। साथ ही यह इतना सूक्ष्म होता है कि इसका हमें परिचय भी नहीं हो पाता है। अन्य दोष तो स्थूल होते हैं, अतः हमारे ध्यान में आ जाते हैं, पर दुर्गुणों के राजारूप इस द्वेष दुर्गुण का हमें पता ही नहीं चलता।

पर, यदि कोई इस द्वेषरूप दुर्गुण को पहचान जाता है और उस पर विजय पा लेता है, तो उसके अन्य सभी दुर्गुण अपने आप शिथिल होने लगते हैं। एक बार आपने अपने मन में उठने वाले इस द्वेष को त्याग में सफलता प्राप्त कर ली, तो समझ लेना चाहिये कि अब आप दुर्गुणों की सेना पर विजय के हकदार बन गये हैं। विजय आपको मिलेगी ही मिलेगी। पर यदि दुर्गुणों के राजारुप इस द्वेष पर विजय पाने के बदले सैनिकरुप अन्य दुर्गणों को जितने में पुरुषार्थ करते रहे और इसे जीतने का कोई प्रयत्न न किया तो संभवतः दुर्गुणों के साथ युद्ध में आपकी विजय संभव न होगी, यह निश्चित है।

संभवतः इसी कारण महर्षि दयानन्द जी ने संध्या के मन्त्रों में "प्राची दिग्ग्रिरधिपतिः ..... "॥ इत्यादि छ मनसापरिक्रमा के मन्त्रों का विनियोग किया है। इन मनसा परिक्रमा के प्रत्येक मन्त्र में " योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥" यह ध्रुव पंक्ति है। प्रातः तथा सायं दोनों समय सन्ध्या करते हुए हम प्रतिदिन कुल मिला कर बारह बार इस इन पंक्तियों का पाठ करते हैं। इन पंक्तियों में, जो हम से द्वेष करता है या हम जिस किसी से द्वेष करते हैं, उस समग्र द्वेषभाव को परमात्मा की न्याय व्यवस्था पर छोड़ देने का संकल्प किया गया है। इस संकल्प के आधार पर हमें स्वयं को इस स्वकीय तथा परकीय द्वेषभाव से मुक्त हो जाना है। इसके लिये प्रथम तो उचित परिस्थिति का निर्माण करना होता है और बाद में फिर द्वेषभाव का विनाश करना होता है।

यदि हम स्वयं को इस स्वकीय तथा परकीय द्वेषभाव से मुक्त करने के लिये उचित परिस्थिति का निर्माण करना चाहते हैं, तो सर्वप्रथम हमें प्राणिमात्र से प्रेम करने का संकल्प ले कर प्राणिमात्र से प्रेम करने का उपक्रम करना पडता है। वस्तुतः यदि आप किसी से प्रेम करने लगते हैं तो द्वेष को जन्म लेने का अवसर ही नहीं मिलता। पर यदि हम किसी से प्रेम न करके उस के प्रति नफरत करने लगते हैं, तो वहाँ अनिवार्य रूप से द्वेष जन्म ले लेता है। अतः द्वेषरूप दुर्गुणों के राजा पर विजय पाने के लिये प्रथम तो सभी से प्रेम करना आवश्यक बन जाता है। जब आप सभी से प्रेम करने लग जाते हैं तो सभी के प्रति अपनत्व का भाव खड़ा होने लगता है। और यही अपनत्व का भाव हमें द्वेष के साथ युद्ध करने में सब से ज्यादा सहायक बनता है।

सामान्य रूप से काम-क्रोध, लोभ-मोह इत्यादि दुर्गुणों को जीवन में से निकाल फेंकने के लिये हम ज्यादा तत्पर रहते हैं। कभी - कभी राग नाम से जाने वाले दुर्गुण के उन्मूल के प्रति कुछ ज्यादा ध्यान देतें हैं, पर इस दुर्गुणों के राजारूप द्वेष के उन्मूलन के प्रति हम सावधान नहीं होते। इसका एक कारण इस दुर्गुण का आकार अत्यन्त सूक्ष्म होना भी है। स्थूल स्वरूप वाले शत्रु हमारी स्थूल दृष्टि में अनुभूत हो जाते हैं, पर जो सूक्ष्म शत्रु है, उसे तो स्थूल दृष्टि से नहीं, उतनी ही सूक्ष्म दृष्टि से देखना होता है। तब कहीं जा कर हम उसके उन्मूलन का उपक्रम कर सकते हैं।

एक और बात भी ध्यातव्य है। यह द्वेष नामक दुर्गुण अन्य दुर्गुणों को जड़ होती है। इस कारण से भी वह हमारे अंदर होते हुए भी हमारी स्थूल दृष्टि से ओझल रहता है। हम जानते हैं कि वृक्ष का तना, पत्ते, फूल, फल सभी कुछ दृष्टिपथ पर आसानी से

आ जाते हैं, पर वृक्ष को जो जड़ है, उसे सामान्य रूप वाली स्थूल दृष्टि देख नहीं सकती है। भूमि में सूक्ष्म रूप से छिपे हुए उस जड़ की प्रतीति तो सूक्ष्म दृष्टि से ही हो सकती है। द्वेष का भी ऐसा ही है। यह अनेकविध दुर्गुणों की जड़ है। बिना द्वेष के क्रोध संभव नहीं होता। बिना द्वेष के निन्दा संभव नहीं होती। बिना द्वेष के व्यवहार में सुखापन नहीं आता। बिना द्वेष के आप कंजूस नहीं रह सकते हैं। किसे किसे याद करें, कई दुर्गुण हमारे अंदर पनपते ही इसीलिये हैं कि द्वेषरूप उनकी जड़ हमारे में होती है। अतः अनेक दुर्गुणों की जड़रूप द्वेष को समाप्त करना ही होता है। एक उदाहरण से इस बात को समझने का प्रयत्न करते हैं। माँ के द्वारा थाली में परोस दी गई करेले की सब्जी में चाहे कितने भी गुण हों, पर यदि मैं उससे द्वेष रखता हूँ, तो यह द्वेष मेरे लिये कई समस्याओं का कारण बन जाता है। तद्यथा – करेले की सब्जी से मुझे द्वेष है क्योंकि कभी मैंने करेले से प्रेम नहीं किया है। करेले की सब्जी से प्रेम न होने के कारण ही जब किसी दिन माँ के द्वारा मेरी थाली में वह परोस दी जाती है, तो माँ का वह व्यवहार मुझ में माँ के प्रति क्रोध उत्पन्न करने की भूमिका रच देता है। प्रतिदिन माँ के प्रति आदर रखने वाले मुझ में माँ के प्रति आज कैसे क्रोध आ गया, यह बात मेरी समझ से परे हो जाती है। पर, यदि आप शान्त चित्त से विचार करेंगे, तो पता चलेगा कि यह सारा खेल वास्तव में द्वेष का ही है। यदि मैं करेले से द्वेष नहीं करूँगा, और करेले के प्रति मेरे मन में उठने वाले द्वेष के इस भाव को समाप्त कर दुँगा, तो माँ के प्रति क्रोध करने का अवसर भी मेरे जीवन में नहीं आयेगा। इतना ही नहीं माँ के प्रति मेरा प्रेम यदि घिरा होगा तो उसके द्वारा परोस दी गई सब्जी से मैं कैसे द्वेष कर सकता हूँ। मुझे करेले की सब्जी का स्वाद पसंद न होने पर भी जिसने इसे परोसा है उसके प्रति प्रगाढ़ प्रेम होने के कारण मुझ में क्रोध के आविर्भाव होने का संभव ही नहीं बनता। इस प्रकार में द्वेषभाव के न होने के कारण क्रोध नामक दुर्गुण को अपने आप जीत लेता हूँ। इसी प्रकार प्रत्येक संसारिक व्यवहार में हमारे अंदर किसी के प्रति जो क्रोधादि दुर्गुण प्रकट हो जाते हैं, उसकी जड़ में यह द्वेष नामक दुर्गुण ही होता है। सांसारिक व्यवहारों को निभाते हुए कई बार हम न चाहते हुए भी द्वेष करने की भूमिका पर पहुँच जाते हैं। उदाहरण के रूप में किसी संस्था के प्रधान पद के निर्वाचन का प्रसंग हो, और उसमें सर्व सम्मति के न रहने पर निर्वाचन की प्रक्रिया में उतरना होता है। ऐसा स्थिति में दो प्रत्याशियों में से जब एक की हमें पसंदगी करनी होती है, तब दूसरे के प्रति कदाचित् न चाहते हुए भी द्वेष कर बैठने की स्थिति हो जाती है। हम कितना भी संयम कर लेंवे, द्वेषभाव की पतली सी छाया मन में जन्म ले ही लेती है। हम सदा काल मनुष्य हैं, इस लिये ऐसा होना असंभव नहीं है। हमारे विचार से इस द्वेषभाव को सह्य माना जा सकता है। पर, इसे तब सह्य माना जा सकता है जब इसे निर्वाचन की प्रक्रिया के परिणाम तक ही सीमित रखा जाय। यदि निर्वाचन की प्रक्रिया के परिणाम तक ही सीमित रखा जाय। यदि निर्वाचन की प्रक्रिया के पूर्ण जाने पर अपना इष्ट परिणाम आया हो या अनिष्ट परिणाम आया हो, दोनों अवस्था में हमें अब उस प्रतिस्पर्ध प्रत्याशी के प्रति उत्पन्न हुए द्वेषभाव को समाप्त कर नहीं करते हैं। अन्य अनेकों सद्गुणों के रहने पर भी यदि आपने इस दुर्गुणों के राजारूप द्वेष पर विजय नहीं पाई, तो आपके सदगुण न तो आपका कल्याण कर सकेंगे और न ही आपकी संस्था का। अतः इस द्वेष नामक दुर्गुण पर विजय पाना अत्यन्त महत्व की उपलब्धि होती है। इस पर विजय पाये बिना कल्याण का अन्य कोई मार्ग नहीं है। कई बार ऐसा देखा जाता है कि मैं तो अपनी ओर से किसी के प्रति द्वेषभाव का परित्याग कर चुका हूँ पर सामने वाला व्यक्ति मेरी ओर द्वेषभाव को सतत बनाये रखता है। अब मैं क्या करूँ। इस स्थिति में भी हमें यह याद रखना है कि सामने वाला व्यक्ति मेरे प्रति द्वेष रख रहा है, और उस कारण से मैं बेचैन रहता हूँ, वह भी कहीं न कहीं मेरे अवशिष्ट रहे इसी दुर्गुण के राजारूप द्वेष का ही प्रभाव है। क्योंकि यदि एक बार में सामने वाली व्यक्ति के प्रति द्वेष की भावना को खत्म कर चुका हूँ, तो उसकी ओर से मेरे मन में कोई शिकायत रहनी ही नहीं चाहिये। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि अब मुझे कोई समस्या नहीं रहेगी। यदि हम प्रत्येक दिन संध्या के मन्त्रों का पाठ करते हुए इस द्वेषभाव से मुक्त होने का संकल्प कर लेंवे, और तदनरूप आचरण करते हुए अपने व्यवहारों को निभाने लगेंगे, तो अन्य छोटे मोटे दुर्गुणों पर विजय पाने का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा तथा हम दुर्गुण मुक्त हो कर सुख के अधिकारी बन जायेंगे।

यज्ञ द्वारा वर्षा

संदीप आर्य

वर्षा में बिजली के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। सम्भवतः यज्ञ भी सर्वप्रथम आकाश में बिजली भरता है फिर मेघ बनते है और वर्षा होती है। अग्निहोत्र के द्वारा धुआँ पैदा होता है जिसमें पर्याप्त मात्रा में भाप, धूलिकण आदि रहते हैं। हवन करते समय घृत सूक्ष्म कणों के रूप में ऊपर उड़ जाता है। यह घृत ऊपर फैले हुए बहुत से धूल कणों और हवन के धुएँ के कणों पर अपनी परत जमा देता है। ये सभी कण बिजली से युक्त होते हैं और उनमें नमी चूसने की विशेष शक्ति होती है। घृत का संयोग पाकर नमी चूसने की शक्ति बढ़ जाती है और नमी की परतें दर परतें बनती चली जाती हैं। इस प्रकार मेघों का निर्माण हो जाता है। अतः मेघ के निर्माण में हवन का धुआँ और घृत की भाप बहुत बड़ा रोल अदा करते हैं। मेघ तो बन गया पर उसका बरसना भी आवश्यक है। कभी-कभी देखने में आता है कि आकाश में मेघ दिखाई पड़ते हैं परन्तु कुछ देर में वे विलीन हो जाते हैं या कहीं और प्रवाहित हो जाते हैं और वह क्षेत्र वर्षा से विमुख हो जाता है। यहाँ भी अग्नि होत्र बहुत बड़ा चमत्कारिक प्रभाव पैदा करता है। क्योंकि अग्निहोत्र केवल मेघ बनाता ही नहीं, अपितु उन्हें बरसाने में भी सहायक होता है। मेघों के बरसाने के लिए वायु में नमी की बहुलता का होना अनिवार्य है। हवा जितनी गर्म होगी , उतना ही अधिक जल धारण कर सकेगी। हवन के कारण तापमान बढ़ जाता है , अतः वायु पर्याप्त नमी खींच लेती है, फिर हवन द्वारा नीचे की वायु गर्म होकर हल्की हो जाती है अतः यह वायु ऊपर बढ़ते समय मेघ को भी अपने साथ ऊपर ले जाती है। वहाँ तापांश की न्यूनता के कारण वायु समस्त नमी को धारण करने में असमर्थ हो जाती है तब मेघ भारी होकर बरसने लगते हैं। यज्ञ के द्वारा वर्षा केवल दिमागी दौड़ नहीं है अपितु वास्तविकता है। प्राचीन भारत में हवन के द्वारा वर्षा कराई जाती थी। इस हेतु प्रत्येक नगर और ग्राम में बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन किया जाता था। ग्रामों में आज भी यह प्रथा प्रचलित है। अनावृष्टि के समय गाँव के सभी लोग मिलकर यज्ञ करते हैं, फिर भारी संख्या में उपस्थित लोगों को भोजन कराया जाता है। उनका विश्वास है कि इस प्रकार इन्द्र देवता प्रसन्न हो जाएँगे तथा वर्षा अवश्य होगी। इस सारे कार्य को ये लोग "जग" कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यज्ञ का नाम बिगड़ कर "जग" बन गया है (जैसे यजमान का जजमान, यमुना का जमना हो गया है) इस अवसर पर किया जाने वाला हवन इस बात का द्योतक है कि अग्निहोत्र वर्षा में सहायक माना जाता रहा है। आज भी शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ करने से वर्षा कराई जा सकती है। इस प्रकार से छोटे-छोटे प्रयोग कई बार किए जा चुके हैं, जो प्रायः सफल रहे हैं। परन्तु प्रायः विद्वानों ने वृष्टियज्ञ हेतु प्रयोग की जाने वाली सामग्री की जानकारी अपने लेखों में विस्तृत रूप में नहीं दी है, केवल कुछ संकेत ही यत्र-तत्र मिलते हैं यथा – **घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः। अस्मभ्यं वृष्टिमा पव॥ ऋ. ९/४९/३ घृती वदमिभश्च हव्यैः॥ ऋ. ६/३/७ सं बर्हिरक्तं हविधा घृतेन॥** अथर्ववेद ७/९८/१

इन मन्त्रों में वृष्टि यज्ञ के लिए घृत हव्य माना है- अर्थात् सोम के निर्माण-हेतु पय (पेय-जल, अन्न, ओषधि, वनस्पति, दूध, घी आदि) की आहुति देनी चाहिए। कृत्रिम वर्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसन्धान करते रहे हैं। कुछ सफलता भी मिली है। जब आकाश में मेघ छाये हुए होते हैं तो उनके ऊपर खुष्क बर्फ छिड़क दी जाती है। इससे बादलों का तापांश कम हो जाता है तथा १५-२० मिनट के बाद वर्षा होनी प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार न बरसने वाले मेघों को भी बरसाया जा सकता है। आस्ट्रेलिया तथा अमेरिका में इस विधि का लाभ उठाया गया है। ऋग्वेद (८/३२/२६) ने भी इस विधि की ओर संकेत किया है। अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम्। हिमेनाविध्यदर्बुदम्॥

अर्थात् चमक-दमक वाले तथा सूर्य की भाँति गति करने वाले मेघों को विद्युत् फाड़ता है तथा मेघों को बर्फ के द्वारा बींधता है।

हवन के द्वारा बादलों को केवल बरसाया ही नहीं जाता, अपितु बादलों का निर्माण भी किया जा सकता है, अतः यदि आकाश मेघाच्छादित न हो तो भी वर्षा की जा सकती है। परन्तु यह समस्त क्रिया अग्नि के बिना सम्भव नहीं। इसीलिए ऋग्वेद (१/७९/२) में कहा है। "आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥" अर्थात् हे अग्नि जब तेरी उत्तम शक्तियाँ सब ओर से मेघ पर आघात करती हैं तब काले रंग का बरसने वाला बादल इधर की ओर झुकता है। वह बिजलियों से युक्त हो जाता है फिर वह मेघ गिरता है और मेघ गरजते हैं। अतः हवन द्वारा जहाँ अनावृष्टि से बचा जा सकता है वहाँ अतिवृष्टि को भी रोका जा सकता है और जब-जब हम चाहें तब-तब वर्षा करवा सकते हैं। **"निकामे निकामे न पर्जन्यो वर्षतु ।"** यजु (२२/२२)

अर्थात् जब-जब हम इच्छा करें तब-तब मेघ बरसे यही ईश्वर से प्रार्थना है। यह किस प्रकार होता है इसका गहराई से अध्ययन करने पर पता चला कि वेदों में यज्ञ-वृष्टि के अनेक मन्त्र हैं, यह प्रमाण है। आइए उनके द्वारा यह जानकारी प्राप्त करते हैं कि वर्षा में यज्ञ किस प्रकार व कितना सहायक है। यज्ञ से वर्षा होने के प्रसंग में वेद में अनेक महत्वपूर्ण संकेत मन्त्रों से प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के २५ वें मन्त्र में – "व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु" – ये शब्द आते हैं। अर्थात् जिस यज्ञ का हम अनुष्ठान करते हैं वह मेघमण्डल में जाकर पृथ्वी के स्थान विशेष पर वर्षा करता है। इस वाक्य में यज्ञ का, यज्ञ की आहुति का मेघमण्डल में गमन होने की क्रिया से वर्षा का सम्बन्ध बताया है। यजुर्वेद अध्याय २/६ में- "मरूतां-पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दियं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह" इसमें बताया है कि यज्ञ की अग्नि में हम जो आहुति देते हैं वह वायुमार्ग से गमन करती है और वह अन्तरिक्ष स्थानों में से द्युलोक तक पहुँचती है तथा पुनः द्युलोक से वह वृष्टि को लाती है। पूर्व मन्त्र में यज्ञ का मेघमण्डल से सम्पर्क होकर वर्षा कराना और दूसरे मन्त्र में मेघ न होने पर यज्ञ की आहुति द्युलोक तक पहुँच कर वहाँ से वृष्टि का हेतु बनना बताया है। इन दोनों मन्त्र वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ की आहुति का वर्षा कराने से पूर्ण सम्बन्ध है, "निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ।" जब-जब हम इच्छा करें तब-तब मेघ बरसें, यह वेदवाक्य प्रत्यक्ष सिद्ध किया जा सकता है। यजुर्वेद अ. २ से १६ वें मन्त्र में- "मित्रावरूणौ त्वा वृष्ट्यावताम्" ये शब्द भी आते हैं अर्थात् हे मित्र और वरूण तुम दोनों वृष्टि से हमारी रक्षा करो। वर्षा पृथिवी पर होवे तो हमारी रक्षा होती है। यदि अतिवर्षा हो तो उससे हानि होती है अतः मित्र और वरूण ये दोनों अतिवृष्टि और अनावृष्टि से हमारा रक्षण करें यह भाव हुआ। मित्र और वरुण दोनों को ही- "प्राणोदानौ वं मित्रावरुणौ" प्राण एवं उदान कहा गया है। मित्र और प्राण नाम से जिस एक तत्व को कहा गया है वर्तमान विज्ञान की परिभाषा में उसे ओषजन (oxygen) कहते हैं और वरूण या उदान नाम से जिस तत्व को वेद में कहा गया है उसे उद्रजन (Hydrogen) कहते हैं। इन दोनों से जल तत्व का निर्माण होता है। इसलिए वेद ने मित्र एवं वरूण के गुणों को देखकर – "तुम दोनों वृष्टि के द्वारा हमारी रक्षा करो" यह कहा है। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि वर्षा कराने में मित्र और वरूण तत्वों की भी आवश्यकता है और यज्ञ की आहुति से इन दोनों तत्वों का आकर्षण, निर्माण या वृद्धि आदि होती है जिससे वृष्टि होती है। इसलिए अथर्ववेद में – मित्रावरूणौ वृष्ट्-आधिपती तौ भावताम् (अथर्ववेद कां. ५ सू. २४ मं. ५) मित्र और वरूण को वर्षा का स्वामी कह कर रक्षा की प्रार्थना की है। उपरोक्त वाक्यों से स्पष्ट है कि वृष्टि के लिये मित्र और वरूण दो पदार्थ आवश्यक हैं उनसे जल बनाया जाता है। यदि हमें वर्षा करानी हो तो दोनों पदार्थों को मिलाकर वर्षा करावें। यदि वर्षा रोकनी हो तो मेघमण्डलस्थ सूक्ष्म जलों को मित्र एवं वरूण रूप में पृथक्-पृथक् स्थापित कर दें। क्या मित्र और वरूण तत्त्व को हम उत्पन्न कर सकते हैं ? इस प्रश्न का समाधान वेद का निम्न मन्त्र कर रहा है। "कवी नो मित्रावरूणा तुविजाता उरूक्षया। दंक्ष दधाते अपसम् ।" (ऋग्वेद १/२/९/) इस मन्त्र के तुविजाता और उरूक्षया पद महत्वपूर्ण हैं। तुविजाता का अर्थ है बहुत कारणों से उत्पन्न और बहुतों में प्रसिद्ध। उरू का अर्थ है संसार के बहुत से पदार्थों में इनका निवास है। इस प्रकार वेद ने स्पष्ट बताया है

मरना तो सब को है, जी के भी देख ले

आनन्द गहलोत

मरने और मारने के लिए बहुत से शब्द हैं। बहुत-से लोग बोलचाल में 'मरना' शब्द को इस्तेमाल करने में संकोच करते हैं। 'वह मर गये' के बदले 'उनकी मृत्यु हो गयी' कहना मरने की खबर देने में उन्हें बुरा नहीं लगता। हिंदी की पहली पीढ़ी के पत्रकारों को किसी नेता या प्रसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु की खबर का शीर्षक देने में 'मृत्यु' के बदले 'स्वर्गवास' लिखना ज्यादा पसंद था। 'स्वर्ग' है या नहीं इस पर विचार किये बिना ही 'स्वर्गवास' शब्द मृत्यु का पर्याय, समानार्थी हो गया है। दुष्ट से दुष्ट और पापी से पापी व्यक्ति के घरवाले उसकी मृत्यु पर कहते हैं कि उनका स्वर्गवास इतने बजे हो गया है, चाहे मरनेवाले को स्वर्ग क्या नरक में भी जगह न मिले। 'देहावसान' मरने का सही शब्द है। कुछ कहते हैं कि अमुक ने इतने बजे प्राण त्याग दिये, जैसे प्राण त्यागने का काम अपनी मर्जी से किया है। अंतिम सांस लेना, जीवन लीला समाप्त होना, पंचतत्वों में विलीन होना, ईश्वर या अल्लाह को प्यारा होना, गुजर जाना, परलोक सिधारना, जनाजा उठना, चल बसना, संसार त्यागना, महाप्रयाण आदि कम से कम पचास शब्द, पचास ढंग हैं मृत्यु को व्यक्त करने के लिए। मरनेवाला अगर कोई सुप्रसिद्ध साधु, संन्यासी है तो यह भी कहा जाने लगा है कि, 'समाधिस्थ' हो गये। उर्दू में मरने के लिए एक प्यारा-सा मौत को इज्जत बख्शनेवाला शब्द है। वह है 'इन्तकाल फरमाना।' 'फरमाना' कहने के लिए आदरसूचक शब्द है। अरबी के शब्द इन्तकाल और संस्कृत के 'अन्तकाल' का संबंध अज्ञात काल से है। अरबी का एक और लफ़्ज़ है 'मौत'। क्या वैदिक युगीन शब्द 'मृत्यु' और 'मौत' में कोई अंतर है ? लगता है कि इन दोनों समान शब्दों ने, मौत के फरिश्ते को कोई भ्रम न हो; इस दृष्टि से उसका काम आसान कर दिया। फरसी का 'मुर्दा' 'मृत; शब्द का रूपान्तर है। 'मुर्दा' और 'मृत' में भी कोई फर्क नहीं है। 'मरना' अर्थ में वैदिक 'मृ' धातु सबसे पुरानी है। इसी से मृत, मरण, मृत्यु, मृतक जैसे शब्द बने हैं 'फारसी', 'मुर्दा' 'मुर्दनी' भी इसी के वंशज हैं। अरबी का 'मैयित' (मृतक, मरा हुआ व्यक्ति, शवयात्रा) भी 'मृ' के ऐसे रिश्तेदार शब्द हैं, जो अलग-अलग भाषाओं में आज भी जिंदा हैं। यूरोपीय भाषाओं के 'मरने' से संबंधित शब्दों की उलझी हुई अलग दास्तान है, लेकिन 'मॉर्टल (मरणशील) शब्द में' 'मृ' की ही आत्मा है। 'मरने के लिए हिंदी में एक और खास शब्द है, जो काफी प्रचलित हो गया है, वह है 'निधन'। संस्कृत में 'निधन' का एक अर्थ निर्धन, गरीब भी है, लेकिन ग़रीबी बढ़ने के साथ-साथ हिंदी का गरीब के लिए शब्दों का भंडार भी बहुत बढ़ गया है। हिंदी ने गलतफ़हमी पैदा न हो, इसलिए 'निधन' शब्द के पास सिर्फ एक ही अर्थ छोड़ा है और वह है 'मृत्यु'। भगवद् गीता (३,३५) 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' (अपने धर्म-कर्तव्यपालन-में मृत्यु भी श्रेयस्कर है) में 'निधन' मृत्यु अर्थ में है, लेकिन 'मृच्छकटिक' (१-१४) में 'निधनता सर्वापदामास्पदम' (ग़रीबी सारी मुसीबतों का घर है) में निधनता मौत अर्थ में नहीं है। उर्दू के मशहूर शायर (शाइर) फिराक गोरखपुरी ने मौत को लाइलाज नहीं माना। उन्होंने कहा-'मौत का भी इलाज हो शायद। जिंदगी का कोई इलाज नहीं।' कि ये मित्र और वरूण अनेक पदार्थों में रहते हैं और उन पदार्थों से उत्पन्न एवं प्रकट किये जा सकते है। उरूक्षया पद में क्षय शब्द का अर्थ निवास स्थान, घर आदि हैं। जैसे घर में हमारी स्थिति होती है, उनमें हमारा निवास, आवागमन होता है उस प्रकार से मित्रवरूण के घर के रूप में अनेक पदार्थ हैं जिनमें उनको रखा जा सकता है और उनसे प्राप्त भी किया जा सकता है। किस तत्त्व से मित्र प्राप्त किया जा सकता है और किससे वरूण तत्त्व प्राप्त किया जा सकता है यह ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वर्षा कराने और रोकने के कार्य में सहायता प्राप्त हो सकती है। एक पदार्थ में रहने वाले एक तत्त्व को निकालना और उस का दूसरे से संयोग कराना यह अग्नि के माध्यम से होता है। अतः अग्नि में इनका आहुति रूप में प्रयोग करके वर्षा कराना तर्क एवं विज्ञान सम्मत कार्य है। यह आहुति वायुमार्ग से अन्तरिक्ष और द्युलोक तक पहुँचती है और वहाँ पर अपने समान पूर्व से विद्यमान् अनुकूल तत्त्वों में मिश्रित हो परिणाम में वृद्धि को प्राप्त होकर वर्षा रूप में परिणत हो जाती है। इसी प्रकार ऐसे तत्त्व जो दोनों को मिलाने वाले, आवश्यक तापमान को बनाने वाले या उनमें आर्द्रता, घनत्व एवं शीतलता की अनुकूल वृद्धि करने की सामर्थ्य रखते हैं उनके उपयोग द्वारा सामर्थ्य एवं समयानुसार क्रिया को करने से यज्ञ द्वारा वर्षा कराने में सहायता होती है।

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष ४ अंक ३ मुम्बई मार्च - २०१३ पृष्ठ- १६ मूल्य-रू.९/-

फाल्गुन २०६९ (मार्च २०१३)

Post Date: 25-03-2013

पोस्ट आफिसः सान्ताक्रुज़

MH/MR/N/136/MBI/-13-15

MAHRIL06007/13/1/2009-TC

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ मुम्बई का मुखपत्र

संपादकः संगीत आर्य-मुद्रक एवं प्रकाशकः चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस २६, मंगलदास रोड, मुम्बई – २ से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड), सान्ताक्रुज़ (प.) मुम्बई – ४०००५४ से प्रकाशित किया। दूरभाषः २६००२८००/२६६०२०७५/२२९३१५१८

प्रति,

वही सुखी है

श्याम चन्द्र कपूर

जो हर समय प्रसन्न रहता है, वही सुखी है। हर बात में खुश रहने की आदत ईश्वर का वरदान। दिन-भर की खट्टी-मीठी बातों में जिसे आनन्द मनाने का ढंग आता है, वह बहुत अच्छा मनुष्य है।जो बालक-बालिका आनन्द पाने का ढंग जान लेते हैं, वे आनन्द के साधन भी जुटा लेते हैं। अपने अन्दर से आनन्द पाना सीखिए। घर के काम में, पढ़ाई-लिखाई और माता-पिता तथा गुरू के बताए काम को करने में आनन्द मानिए।

काम के घंटों के बाद ही मनुष्य थकान अनुभव करता है, काम के समय में नहीं। काम के समय डटकर काम करना चाहिए और आराम के समय पूरा आराम करना चाहिए। काम करने के बाद, उसे समेट देना चाहिए। फिर किसी खेल-कूद या मनोरंजन में लग जाना चाहिए। दिन-भर की थकावट को मिटाने के लिए किसी खेल में लगना आवश्यक है। इससे दिमाग का बोझ हल्का हो जाता है। खेलों में शामिल होने से चेहरा खिल जाता है।

बालक-बालिकाओं को कुछ समय हंसने में भी बिताना चाहिए। मनुष्य का हंसमुख चेहरा होना एक बहुत बड़ा गुण है। काम-काज के बाद हास्य-विनोद से जीवन में ताजगी आती है। जिसको हंसने की आदत पड़ जाती है, वह कभी निराश नहीं होता। इसलिए हर समय वह काम में सफल होता है।

घर से बाहर कई प्रकार के खेल, मनोरंजन और मनोविनोद के साधन हो सकते हैं। जब हम प्रसन्न होकर हंसते हैं, तो प्रकृति भी हमारे साथ हंसती-मुस्कराती है। वायु हमारे शरीर को शीतल करती है। धरती हरी-भरी घास से ढकी मालूम होती है। पेड़ हरियाली से ढके प्रतीत होते हैं। फूल अपनी सुगंध से मन को मोहित करने लगते हैं। पक्षी मीठे स्वर से चहचहाने लगते हैं सूर्य, चन्द्र और तारे अधिक सुन्दर दिखाई देने लगते हैं।

प्रभात में आंखें खोलिए और संसार पर दृष्टि डालिए। स्वच्छ वायु का सेवन कीजिए। उदय होते सूर्य की किरणों को निहारिए। इस मधुरता और सुन्दरता से आप आनन्द-विभोर हो जायेंगे।

यह सोचिए कि हम जिस संसार में रहते हैं, वह अच्छा है। हम जो काम करते हैं, वह अच्छा है। हमारे माता-पिता अच्छे हैं। भाई-बहन अच्छे हैं। ऐसा सोचने से आपको आनन्द मिलेगा। इस आनन्द से आपको रोमांच हो जाएगा। ईश्वर का धन्यवाद कीजिए। इससे आपको आनन्द मिलेगा। इस आनन्द से आपके शरीर को बल मिलेगा, आपको काम करने की शक्ति मिलेगी।

आपके चारों ओर आनन्द की खानें हैं। जो उनमें से आनन्द निकालने का यत्न करता है, वही बुद्धिमान् है। एक छोटा-सा गीत गाइए, आपको आनन्द मिलेगा। ईश्वर की प्रार्थना कीजिए, उसमें आनन्द मिलेगा। एक उत्तम कविता पढ़िए, आनन्द मिलेगा। कोई सुन्दर मूर्ति या चित्र देखिए, आनन्द मिलेगा। कुछ मधुर शव्द बोलिए, आनन्द मिलेगा। जब आपको इनसे आनन्द मिलेगा, तो उसका कुछ भाग मित्रों को बांटिए। गीत या कविता सुनाकर दूसरों को प्रसन्न कीजिए, दूसरों को चुटकुले या हंसी की कोई बात सुनाकर आनन्द दीजिए।